International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1117-1120

भारतीय समाज में आरक्षण का राजनीतिकरण (एक विश्लेषण)

[1] डॉ. नरेन्द्र सीमतवाल, [2] गौरव सिंघल
[1] ऐसोसियेट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सनराईज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत।
[2] अनुसंधान समन्वयक, सनराईज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत।

सारांश
संविधान निर्माताओं ने भारतीय समाज के इतिहास की समझ तथा स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विकसित राष्ट्रीय आदर्शों एवं लक्ष्यों के आलोक में शताब्दियों से चले आ रहे अन्याय के प्रतिकार ने नैतिक आग्रह का सम्मान करते हुऐ अनेक संवैधानिक उपायों को न केवल विधिक मान्यता प्रदान की बल्कि इनके कियान्वयन का भी प्रयास किया। दलितों वंचितों या पिछडों को अगडो के साथ खडे हो सकने में समर्थ बनाने की दृष्टि से एक ओर जहॉ छुआछूत और जातीय भेदभाव को दूर करने के लिए संवैधानिकक व्यवस्था की, वहीं दूसरी ओर आरक्षण का प्रावधान भी किया। मुठ्ठी भर लोग उपर उठते गए पर सामाजिक चेतना के विकास अथवा लाभों की दृष्टि से कोई बुनियादी अन्तर नहीं आया। असल में आरक्षण को सैद्धान्तिक आधार देने के स्थान पर जातीय आधार मानकर राजनीतिक सकीर्ण स्वार्थों को इससे जोड़ दिया गया और वोट–बैंक की राजनीति का हिस्सा बना दिया गया। परिणामतः कोई ठोस बदलाव संभव नहीं हुआ और डॉ. अम्बेडकर का सपना अधूरा ही रह गया।

मुख्य शब्द : आरक्षण, राजनीतिकरण, संविधान, सामाजिक न्याय, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दल, जाति, दलित वर्ग

प्रस्तावना
आरक्षण चूंकि राजनीति से जुड गया है, परिणामस्वरूप इसके आरम्भ होने के पश्चात् अब तक इतने दशक समाप्त हो चुके हैं, परन्तु इसके बाद भी बहुसंख्या में दलित वर्ग आरक्षण से वंचित बना हुआ है, यह एक विडंबना हैं।[1] वर्तमान में सब कुछ ही वोट बैंक की राजनीति से जुड चुका है। अब तो कोशिश यही है कि जातिवाद को ही राजनीति का माध्यम बनाया जाय, क्योंकि सवर्ण से लेकर असवर्ण राजनीतिज्ञ यही मानने लगा है कि वह इससे विधानसभा से लेकर संसद तक आसानी से पहॅच सकता है।
आज भी देश में दलित एवं पिछडे हुए समाज का राजनीतिक शोषण जारी है। असल में उन्हे सम्मान नहीं दिया जाता बल्कि समायोजित किया जाता है। उन्हें अधिकारी नहीं बनाया जाता, बल्कि पदासीन कर प्ररर्शित किया जाता है।[2] जबकि विधान निर्माता चाहते थे कि प्रजातंत्र सभी व्यक्तियों की सामूहिक सम्पत्ति का दर्पण होना चाहिए। डॉ. अम्बेड़कर का कहना था कि किसी भी सरकार का मौलिक कर्तव्य व्यक्ति और उसके स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा करना होना चाहिए और जब सरकार ऐसा न कर सके, तब उसका नैतिक आधार भी समाप्त हो जाता है।[3]
इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता, कि आरक्षण के माध्यम से इन लोगों, को यहॉ लाभ हुआ वहीं राष्ट्रीय जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में प्रगति तथा विकास किया है। वहीं इन्होंने अपनी पहचान बनाई है, और काफी समस्याओं से अभी तक झूझ रहें हैं।[4]

पद्धति
प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से ऐतिहासिक और अनुभव जन्य का एक संयोजन है। शोध को सफल बनाने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से डेटा एकत्रित किया गया है जिसमें अलग–अलग सरकारी दस्तावेज, प्रकाशित और अप्रकाशित कार्य, समाचार पत्र, पत्रिकाओं और अन्य स्त्रोत शामिल हैं। समस्या को स्पष्ट समझने के लिए अनुसंधान में डाटा कम्प्यूटर विश्लेषण एकत्रित करने के बाद गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तरीकों को अपनाया गया है।

मडल आयोग के विरूद्ध आंदोलन
मंडल आयोग का गठन उन विसंगतियों को दूर करने के उद्देश्य से किया था, जो सामाजिक न्याय की स्थापना को वास्तविकता में बदलने के मार्ग में अवरोधों के रूप में खड़ी हुई हो गई थी। इस आयोग का गठन ही इस बात का प्रमाण था कि जो चाहा गया था, वह वास्तव में प्राप्त नहीं किया जा सका, पर आयोग की रिपोर्ट को दस वर्ष तक ठण्डे बस्ते में डाले रखना भी इस बात का प्रयास था कि शासक वर्ग सामाजिक न्याय के दर्शन में वह आस्था नहीं रखते थे जो रिर्पोट को स्वीकृति दिलवाने और फिर उसे कियान्वित कराने के लिए प्रेरक–चालक शक्ति का काम कर सकती थी। आखिर में राजनीतिक कारणों से रिपोर्ट ने स्वीकृति पाई और जब उसकी क्रियान्विति आसन्न दिखने लगी, देशभर में ऐसा माहौल बनाया गया, अत्यन्त सुनियोजित तरीके से, जैसे यह सामाजिक न्याय कायम करने का नहीं, अपितु उस पर चोट पहुॅचाने का संकल्प हो। यह भी विडम्बना ही है कि जिन राजनीतिक दलो ने उस समय मण्डल आयोग को बहाना बनाकर केन्द्र सरकार को गिरा देने तक में संकोच नहीं किया था उन्होनें बाद में सत्ता पा जाने पर इन सिफारिशों को न्यायोचित अथवा निरापद मानकर। उन्हें अधिक उत्साह के साथ लागू कर दिया। यहां दृष्य यह है कि सत्ताधारी राजनीतिक दल जिस नीति को लागू कर दें, जरूरी नहीं कि उसके अन्तिम संगठन अथवा तथा उसके समर्थक भी उसका समर्थन कर ही दे हैं। सरकार ने सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे वर्गों के लिए 27 प्रतिशत नौकरियों में आरक्षण देने की घोषणा कर दी। घोषणा में देश ने कई भागों में उपद्रवों की शुरूआत कर डाली,

जिसका नेतृत्व आरक्षण विरोधी छात्र कर रहे थे। राजनैतिक दल एक तरफ तो शाब्दिक समर्थन देते नजर आकर वहीं दूसरी ओर व्यवहार में खिलाफत करते रहे।

मूल रूप से यह दो धाराओं में विभक्त था। पहली धारा में कुछ जातियों का कहना था कि उन्हें भी मंडल की सिफारिशों का लाभ मिलना चाहिए, क्योंकि वे भी सामाजिक व शैक्षणिक तौर पर पिछड़ी हुई हैं और वहीं दूसरी धारा उस रूप से सामने आई, जो मण्डल सिफारिशों के विरोध में दृढ़ता से खड़ी थी और जिनका यह मानना था, कि इस देश में जातिवाद का संघर्ष निरन्तरता से बढ़ेगा।[5]

कौन किधर खड़ा होकर मंडल के दौर में संघर्षरत था, यह जानना जरूरी है। इसमें सैद्धान्तिक रूप से पहली श्रेणी में वे लोग थे, जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य) अर्थात् सवर्ण लोग थे। वहीं परसी व ऊँचे तबके के ईसाई भी इनका साथ दे रहे थे। इस श्रेणी के लोग और जातियॉ मण्डल–आयोग की सिफारिशों के खिलाफ आवाज उठा रहे थे। दूसरी श्रेणी में, ऐसे द्विज या सवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य) थे, जो शोषित व उत्पीड़ित तथा दलित–पिछड़ों के पक्षधर होकर अपना विश्वास व्यक्त कर रहे थे। तीसरी श्रेणी, उन लोगों की थी जो भ्रम में थे। चौथी श्रेणी में, दलित व आदिवासी लोग थे, जो मंडल सिफारिशों के समर्थन में पूर्ण, रूप से खडे थे उनकी पक्षधरता का सैद्धान्तिक आधार कम करके नहीं आंका जा सकता था। क्योंकि विशेषकर दलितों की भूमिका इस तरह की थी, जैसे कि वे स्वयं अपनी लड़ाई लड़ रहे हों।

उत्तेजना के सबसे भयानक दृश्य (स्वयं का बलिदान जैसे उदाहरण) मंडल विरोध में सामने आए। मंडल आयोग की सिफारिशों पर सरकारी घोषणा को अवरूद्ध करना, टायर जलाना, बसों पर पत्थर फैंकना आदि आरम्भ कर दिया। 20 वर्षीय राजीव गोस्वामी ने आरक्षण के खिलाफ आत्मदाह का प्रचंड रास्ता निकाला। गोस्वामी इस तरह मंडल विरोध का प्रतीक बन गया। इसके बाद सुरेन्द्र सिहं चौहान, अखिलेश पाण्डे, जतिन्दर वैध, विवेक चतुर्वेदी, संदीप, राजेन्द्र सिहं एवं राजीव गौतम तथा अन्य नवयुवक आत्मदाह के दुस्साहस के कारण राष्ट्रीय सुर्खियों में आ गए। दक्षिण दिल्ली में मोनिका चढ्ढा ने भी आरक्षण विरोध में खुद को आग लगा ली थी। बाद में उसने अपनी मॉ से पूछा था–''मम्मी मेरी तस्वीर किसी अखबार में छपी है या नहीं।[6] सिरसा में हिन्दी साहित्य में एम.ए. का 21 वर्षीय विद्यार्थी राजीव गौतम, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं का स्तरीय भाषणकर्त्ता था। आरक्षण विरोध में उसने भी आत्मदाह किया। उसका कहना था ''देश के नेतृत्व को हिला देना उच्चतम बलिदान का कार्य है।''[7]

यदि गम्भीरता से सोचें तो यह अजीब बात नहीं है, कि पिछड़ी जाति एवं वर्गों के लिये सामाजिक न्याय की मॉग जनतात्रिंक है, यह उन लोगों तक जनतंत्र का विस्तार है, जो राज्य व समाज के मामलों में अपने को बराबर के स्तर पर शामिल किये जाने की मॉग कर रहे हैं।

मीडिया की भूमिका

संचार वह प्रक्रिया है, जो वार्ता, संवाद और सम्बन्धों को सुदृढ़ व सापेक्ष आधार प्रदान करती है और जब अनगिनत व्यक्तियों तक यह प्रक्रिया विस्तृत होती है, तब व्यापक परिप्रेक्ष्य में उसे 'जन संचार' के रूप में परिभाषित किया जाता है। सार्वजनिक रूप से आधुनिक युग में इसी को 'मीडिया' के नाम से जाना जाता है। मीडिया किसी भी प्रकार का विरोध व आन्दोलन का समाचार देने में दिलचस्पी रखता है। अतः आरक्षण विरोधी आन्दोलन में मीडिया की दिलचस्पी स्वभाविक थी। दिल्ली के तीन अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिकों ने आरक्षण विरोध को सुर्खियों में लाने के जो तरीके कवरेज के लिये इस्तेमाल किए, उसे नमूने के तौर पर यहॉ दिया जा रहा है–

तालिका 1: तीन लोकप्रिय राष्ट्रीय अंग्रेजी दैनिकों द्वारा आरक्षण विरोधी आन्दोलन की कवरेज (15 अगस्त, से 5 अक्टूम्बर 1990 तक)

समाचार पत्र	सामाचार रपट		दृश्य रूप से		सम्पादकीय
	मुख्य पृष्ठ	अन्य पृष्ठ	मुख्य पृष्ठ	अन्य पृष्ठ	
1. इंडियन एक्सप्रेस (नई दिल्ली)	2067	3660	1535	4216	185
2. द टाइम्स ऑफ इंडिया(नई दिल्ली)	1655	3421	1158	2733	171
3. द हिन्दू	918	1522	166	684	151

स्त्रोत : एस. शिवानान्द, (लेख), मंडल मंदिर व मस्जिद–ड्युबियस रोल ऑफ मीडिया, मेनस्ट्रीम, 20 अक्टूम्बर, 1990

मीडिया के उकसावों के परिणामस्वरूप विद्यार्थी समुदाय इस तरह आत्मदाह जैसे वीभत्स कारनामों को दिखा कर अपना वर्चस्व स्थापित करने में लगा, जो एक खतरनाक, अनैतिक व अमानवीय रूझान था। इसे मीडिया के प्रतीक बने 'इंडियन एक्सप्रेस' या 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसे समाचार पत्रों ने हतोत्साहित, असहमतियुक्त या निन्दनीय बताने के स्थान पर महिमामंडित किया, यह विडंबना का विषय है, और यह मीडिया का निरपेक्षता अप्रांसगिक बनाने का आख्यान उपस्थित करता है।

इस सबसे साफ हो जाता है कि मीडिया ने आन्दोलन के बारे में जिम्मेदारी से काम नहीं लिया और पूर्वाग्रहों से ग्रसित भावना दर्शायी है। मद्रास मेडिकल कॉलेज के मनोचिकित्सा विषय के प्रोफेसर वी. रामचन्द्रन कहते हैं, कि आत्मघात की घटनाओं के बारे में मीडिया अनावृति से देखा–देखी का असर हुआ है। जो तरूण आरक्षण–रपट आदि निहितार्थ को नहीं समझ सकते थे, उन्होनें भी देखा–देखी आवेश में आत्मदाह कर लिया।[8]

उच्चतम न्यायालय ने नरसिंघराव की कांग्रेस सरकार के शपथ–पत्र के मुताबिक स्वर्ण आर्थिक पिछडों के आरक्षण की बात को नहीं माना। इस विषय में न्यायालय का यही विचार रहा कि आरक्षण आर्थिक दशा पर नहीं व शैक्षणिक रूप से पिछडे लोगों के लिए है। दूसरी ओर यह भी प्रस्थापना उजागर हुई कि पिछडों में भी आरक्षण उन्ही के लिए है जो सामाजिक –शैक्षणिक रूप से पिछडे है ही, पहन्तु आर्थिक तौर पर भी कमजोर है।

राजनीतिक दलों की भूमिका

विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार अन्य पिछडे वर्गों के लिये मंडल आयोग की कुछ सिफारिशों को मानते हुए आरक्षण लागू करने का निर्णय भारतीय राजनीति में एक नया मोड और बदलाव लाने का कारण बना। यह तो स्पष्टता से सभी जानते हैं कि राजनैतिक दलों की प्रतिक्रिया सदैव ही चुनावी अनिवार्यताओं को मद्देनजर रखने का रूप धारण करती रहती है।

यों देखा जाय तो राजनैतिक दलों का वैधानिक, सैद्धानितक या औपचारिक रूप से ऊपरी तौर पर जो भी कहना हो, यह अन्दरूनी

हकीकत है, कि बिना किसी अपवाद के हर राजनैतिक दल हमारे देश में चुनावी समीकरण धर्म और जाति के आधार पर ही बनाता है। इसलिये इन दलों की स्थिति और रूझान भी आम तौर से राजनीति के तौर पर अपनी पसंद की जाति–बिरादरियों के हितों के अनुरूप ही होती है।

मंडल कमीशन की रपट को पहली सरकारों ने अधिक तरजीह न दी थी। जनता दल ने कमीशन रपट की कुछ सिफारिशों को मानने की घोषणा करके आरक्षण का मुद्दा आगे बढाया। इस सन्दर्भ में कमीशन की रपट ने देश की राजनीति का ध्रुवीकरण कर दिया। यह इतना अचानक और तेजी से हुआ कि जाति–बिरादरी के धरातल की राजनीति को अधिक संबल तो मिला ही, वहीं विभिन्न दलों की राजनीति का खुलासा भी हुआ।

आरक्षण की बढती मॉगे

स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ ही सामाजिक न्याय के प्रश्न को हल करने के लिये संविधान निर्माताओं ने दस वर्ष के लिये अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लोगों को आरक्षण सुविधा प्रदान की थी। संविधान में प्रावधान किया गया कि पिछडे समूहों/वर्गों को अनुच्छेद–16 में आरक्षण की व्यवस्था[9] तब तक रहेगी, जब तक कि सभी वर्गों/समूहों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल जाता। संविधान बनाते समय संविधान निर्माताओं का विचार था, कि जो पिछडी जातियॉ सैकडों वर्षों से उच्च वर्ग के लोगों द्वारा सताए जाने के कारण प्रगति नहीं कर पाई हैं, वे आरक्षण के माध्यम से अन्य जातियों के समकक्ष आ सकेंगी।

संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 की धारा–2 के द्वारा अनुच्छेद 15 में 15(4) जोडकर यह व्यवस्था भी की गई[10] कि सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से जो पिछडे वर्गों के लोगों के लिए सरकार यदि विशेष व्यवस्था करे तो अन्य नागरिकों के अधिकारों का हनन न माना जाए। कालान्तर में आरक्षण की यह व्यवस्था प्रति 10 वर्ष के लिये बढायी जाती रही है।[11]

प्रारम्भ में दस वर्ष की समय सीमा तय करने का मकसद यह रहा था, कि यदि किसी समूह का उत्थान हो गया या पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिल गया है, तो उसे आरक्षण की सीमा से बाहर कर दिया जाय और इस तरह से एक के बाद एक करके आरक्षण व्यवस्था अपने आप से समाप्त हो जायेगी। परन्तु यहॉ तो आरम्भ से ही आरक्षण राजनीति का एक हथियार बना लिया गया और इसे समाप्त करना तो दूर रहा, इसकी सीमाओं का निरन्तरता से विस्तार जारी रहा है। वास्तव में इसका मकसद कुछ समूहों के उत्थान के नाम पर वोट–बैंक बढाना बन गया। राजनैतिक दलों की सरकारों की राज्यों में यह प्रतिस्पर्धा तीव्रता से गतिमान है।

कहना न होगा, कि प्राचीन काल से ही हमारे देश में तो सामाजिक–सम्मान और धन–सम्पत्ति में सवर्ण समाज (अगडों) का आरक्षण रहा और एक सीमा तक (अनौपचारिक रूप से) आज भी है और इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है। अब तीसरा अध्याय आरक्षण में जुडने जा रहा है, जिसकी मॉग सामने है, कि अगडों के गरीबों को भी आरक्षण दिया जाये। वहीं इसकी शुरूआत भाजपा शासित राजस्थान में जाटों का आरक्षण देकर हो चुकी है।[12] दलित जनजाति, पिछडा वर्ग अर्थात इन सबके नाम पर राजनीति करने वाली पार्टियों ने निजी क्षेत्रों में भी आरक्षण की निरन्तर मॉग की। जिनमें से निजी संस्थाओं में प्रवेश को तो लोकसभा ने 21 दिसम्बर, 2005 को हरी झंडी भी दिखा दी है।[13]

आगे भी इसी तरह की उम्मीद लोगों में जगाकर वोट बटोरने की भूमिका तैयार की जा रही है। जिन वर्गों को आरक्षण मिल रहा है, इसे उनके खिलाफ साजिश भी माना जा सकता है, क्योंकि अगर आरक्षण का पिटारा इसी तरह खुलेगा तो उसका अन्त क्या होगा, यह कहना कठिन ही है।[14]

समाज में ऊॅची कही जानी वाली और काफी हद तक ऊॅची समझी जाने वाली जातियों का इस समय'आरक्षण की मांग का काफी जोर उपस्थित है। वर्तमान में नेताओं का मुख्य काम अब लोगों को जुबानी दिलासा देना ही रह गया है, और इसमें कोई पीछे नहीं रहना चाहता।

इस समय कोई 'आरक्षण' की परिभाषा करना चाहे, तो क्या कहे? मोटे तौर पर यह गैर–बराबर लोगों को बराबर बनाने का एक फर्मूला है।[15] इस समय ब्राहाण, राजपूत, जाट, गुर्जर, और दिन प्रति दिन नए वर्गों की ओर से कि आरक्षण की जो आवाज बुलन्द की जा रही है, उसका सबसे बडा कारण यही बताया जा सकता है कि आरक्षण का मुकाबला न कर सको तो स्वयं आरक्षण की श्रेणी में आ जाओ। आज से पिछले कुछ वर्ष पहले तक यह सोचना कठिन था, कि वर्ण व्यवस्था में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले ब्राहाम्ण या क्षत्रिय, चाहे वे कितने ही दुखी व दरिद्र हों, कभी आरक्षण की मॉग कर हरिजन–दलितों की श्रेणी में शामिल होना चाहेगें। इससे कम से कम यह तो ज्ञात होता है, कि ऊॅची कही जाने वाली जातियों का खोखला बडप्पन अब डगमगाने लगा है।

अभी तक आरक्षण सुविधा देने के मामले में जो भी निर्णय हुए हैं, वे राजनीति से अधिकतर प्रेरित हैं। इसलिये मानकर चलना चाहिए कि आरक्षण का आधार जब तक आर्थिक न होगा, तब तक वास्तविक उपेक्षित वर्ग लाभान्वित नहीं हो सकता।[16] वैसे भी कमोबेश सभी जातियां 'आरक्षण' में शामिल हो जाये तो फिर आरक्षण का मूल्य ही क्या रह जायेगा? इसका जवाब पाना बहुत कठिन है।

आरक्षण अभी भी आवश्यक क्यो?

आज गंभीरता से यह विचार करना होगा, कि करीब आधी शताब्दी बीत जाने के बाद आरक्षण के माध्यम से दलित समाज के जीवन स्तर में कितना सुधार हुआ है, तब यही कहा जा सकता है कि आरक्षण से दलित समाज में इस दौर में कोई बहुत बडा बदलाव नही आया है। वर्तमान में स्थिति यह है, कि देश का अस्सी प्रतिशत दलित समाज आरक्षण के लाभों से वंचित है।

हाल ही यूजीसी ने मानव संसाधन मंत्रालय के पास यह सुझाव भेजा है कि विश्वविद्यालय में फैकल्टी के आरक्षण का प्रावधान विश्वविद्यालय के स्तर पर न होकर विभाग स्तर पर होना चाहिए। यह फॉमूला दलित और पिछडा समुदाय के मन में आंशका पैदा कर रहा है। उनका कहना है कि अगर ऐसा हुआ तो कुछ विभाग जहां पर प्रोफेसर का एक ही पर होता है वह नियमतः अनारक्षित हो जाएगा और समाज के दबे–कुचले वर्ग का घाटा होगा, क्योंकि अभी तक सभी विभागों के समान स्तर के पदों को एक समूह मानकर आरक्षण के प्रतिशत की गणना की जाती थी। जाहिर है कि शैक्षणिक संस्थाओं में सामाजिक न्याय की व्यवस्था न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच उलझ गई है। यह उलझन नई नहीं है। इस विवाद की वजह से शिक्षण संस्थाओं में जातिवाद तो बढता ही है साथ में अवाश्यक पद लम्बे समय तक खाली पडे रहते हैं।[17]

यह वास्तविकता है, कि हमारे नेतागण यह चाहते ही नहीं हैं, दलित शब्द राजनीतिक शब्दकोश से हट जाय क्योंकि यह शब्द राजनीतिक शब्दकोष में न रहा, तब वे कुर्सी हथियाने का रोमांचक खेल किसके सहारे खेल पायेंगे। इस कारण वे चाहते हैं, कि दलित–पिछडे सभी लगातार आरक्षण की बैसाखी के सहारे चलते रहें, और उनमें कभी अपने बलबूते खडे होने की शक्ति पैदा न हो सके। यही वह कारण बना कि दलित व पिछडों का आवश्यकतानुसार विकास न हो पाया।[18]

परिणाम एवं चर्चा

हमें यह याद रखना चाहिए, कि आरक्षण कोई स्थायी योजना नहीं है, और इसे कभी भी सामाजिक विभाजन का आधार भी नहीं बनाया जा सकता है। आरक्षण एक निश्चित अवधि की योजना है, जिसका लक्ष्य समाज के पिछडे हुये वर्गों को उन्नत वर्गों के समक्ष लाना तथा सरकार व प्रशासन में उन्हें उचित प्रतिनिधित्व दिलाना है। इसलिए जितना जोर आरक्षण देने पर होना चाहिए, उतना ही जोर इस बार पर होना चाहिए, कि इसका लाभ अपात्रों को न मिले। यह सोचकर ही सर्वोच्च न्यायालय ने अपने मंडल वाले फैसले में एक स्थायी पिछडा वर्ग आयोग गठन करने का निर्देश दिया था और कहा था, कि इस आयोग का काम यह विचार करना भी होगा, कि आरक्षण की योजना में किन जातियों को रखना है और कब किन को इस लाभ से हटाना है। क्योंकि यह तो नहीं हो सकता कि एक बार जो आरक्षण मिल गया, वह हमेशा के लिए मिल गया।[19]

सिफारिशे

इस शोध में कुछ सुझाव दिए गए हैं जिसकी पालना सामाजिक न्याय के हित में हो सकती है। जाति विहीन समाज की स्थापना के लिये अनिवार्य शिक्षा, जनजागरण, नारी चेतना, अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन और त्वरित औद्योगिक विकास के अलावा आवश्यक रूप से रोजगार के प्रावधान होने चाहिए। इस तरह जहॉ परस्पर सामाजिक समाज में अभिवृद्धि होगी और ऐसे जागरण के वातावरण में समरसता का धरातल निर्मित हो सकेगा।

यह आज का ज्वलंत विषय है, कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछडे वर्गों के लोगों को पढने–लिखने की भरपूर सुविधाऍ दी जायें। इन सुविधाओं के फलस्वरूप वे इस काबिल बनें कि सवर्ण जातियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खडे हो सकें और इसी तरह नौकरियों में आरक्षण के माध्यम से महत्व मिले। इससे जहॉ एक ओर दलित व पिछडों का सही अर्थ से उत्थान होगा वहीं दूसरी ओर इससे राष्ट्र भी तेज गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा।

निष्कर्ष

समय की मॉग है, कि आरक्षण जैसे मुद्दों पर गम्भीरता से पुनर्विचार हो और सही परिप्रेक्ष्य में पिछडों को आगे बढ़ाने और बराबर में लाने का काम किया जाये। यदि अभी भी आरक्षण को वोट–बैंक की राजनीति से अलग करने की कोशिश न की गई, तो देश में सामाजिक न्याय का लक्ष्य अधूरा ही रह जायेगा[20] और राष्ट्रीय विकास का मुद्दा भी अधूरा ही रहेगा। स्पष्ट है, कि परिस्थितियों को देखते हुए अभी दलित पिछडों के लिये आरक्षण की अनिवार्यता बनी हुई है।

संदर्भ

1. मोहन, नरेन्द्र आरक्षण की आड़ में वोट–बैंक, (लेख), दैनिक जागरण, 13 मई 2001.
2. यादव, हुकम देव नारायण, चौधरी चरण सिंह की प्रासंगिकता, (लेख), राष्ट्रीय सहारा, 28 दिसम्बर 2001
3. मुर्रे, ए.आर.एम., एन, इन्ट्रोडेक्शन टू पॉलिटिकल फिलॉसफी, 1959, पृ.119
4. जाटव, डी. आर., सामाजिक न्याय का सिद्धान्त, समता साहित्य सदन, जयपुर 1991, पृ.137–38
5. सिंह, गोपाल और शर्मा, हरीलाल, रिजर्वेशन पॉलिटिक्स इन इण्डिया, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, 1995, पृ.64–70
6. इंडिया टूडे, लेखा–जोखा, 1986–2001, 29 मई, 2002, पृ.18
7. शर्मा, चारूलता, न्यूरोसिस ऑफ यंग सेल्फ इम्बोलेशन, केरियर एंड कम्पीटीशन टाइम्स, नवम्बर 1990
8. शर्मा, चारूलता, उपरोक्त
9. पाण्डेय, जयनारायण, भारत का संविधान, सैन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2000, पृ.120
10. पाण्डेय, जयनारायण, भारत का संविधान, उपरोक्त
11. कौशिक रोहित, राजनीति मे उलझा आरक्षण (लेख) राष्ट्रीय सहारा, 17 अगस्त,2001
12. राज, उदित, साजिश है आर्थिक आधार पर आरक्षण, (लेख), दैनिक भास्कर, 29 मई 2003
13. आरक्षण कार्यवाई, 21 दिसम्बर, 2005
14. आरक्षण अनंत, दैनिक भास्कर, 28 जून, 2003
15. वाजपेयी, उपेन्द्र, आरक्षण की राजनीति के उतर–चढाव, (लेख), राजस्थान पत्रिका, 2जून, 2002
16. आरक्षण, ताकत की फिर जीत, दैनिक जनज्योति, 1 अगस्त, 2001
17. यूजीसी के फॉमूले से छिडा सामाजिक न्याय का विवाद, सम्पादकीय, दैनिक भास्कर, 24 अक्टूबर, 2017
18. कौशिक, रोहित उपरोक्त
19. राजकिशोर, चिकनी परत की समस्याएं (लेख), नवभारत टाईम्स, 7 मई 2003
20. कौशिक, रोहित, राजनीति में उलझा आरक्षण, (लेख), राष्ट्रीय सहारा, 17 अगस्त, 2001